वीर संवत् २४९२, माघ शुक्ल २, रविवार
दि. २३-१-१९६६, ढाल-२, गाथा ३, ४ प्रवचन नं.-६

'दौलतरामजी' कृत दूसरी ढाल चलती है। तीसरी गाथा है न ?

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल,
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देहमें निज पिछान।।३।।

है, तीसरी गाथा ? '**जीवतत्त्व के विषय में...**' मिथ्याश्रद्धा - विपरीत मान्यता। यह विपरीत मान्यता दुःखरूप है। विपरीत श्रद्धा, यह दुःख का कारण है और विपरीत श्रद्धा ही परिभ्रमण का मूल है। कुछ समझ में आया ? विपरीत श्रद्धा, वह दुःखरूप है, असत्यरूप है, भ्रमणा का कारण है; इसलिए उसे बताते हैं कि जीव में क्या विपरीतता/ श्रद्धा है ? कि पुद्गल इस जगत में शरीर, कर्म आदि सब पुद्गल है। यह चित्र है, उसमें किया होगा। किसी का चित्र होगा। यहाँ की एक पुस्तक थी न ? वह किसीने लिया लगता है। यहाँ की एक चित्रवाली पुस्तक थी। वह यहाँ की पुस्तक है, वह किसी न परसों ली है। सागर में गया। यहाँ की पुस्तक है न एक ? वह मुझे चाहिए नहीं वह तो यहाँ की एक पुस्तक है, वह कहाँ है ? ऐसा। ले गया था, किसी ने लिया होगा। उसमें चित्र है। देखो ! उसमें चित्र है न ? पुद्गल, देखो ! चित्र है उसमें पुद्गल। वह ऊपर लिखा है न ? वह। क्या

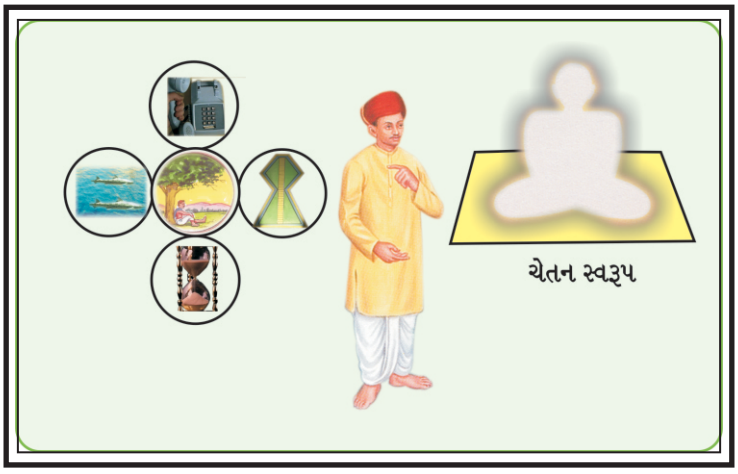

कहलाता है ? (ग्रामोफोन) गुजराती शब्द कहो न, बाजा ! देखो, ऊपर बाजा है। है न ? वह पुद्गल है। यह बतलाने में क्या आशय है ? कि यह आवाज आदि पुद्गल है। आवाज और निकलती है, वह पुद्गल है, वह आत्मा नहीं है। आत्मा से आवाज नहीं निकलती। भाषा, वह पुद्गल है, जड़ है - ऐसा कहा है। देखो ?

'**धर्म...**' देखो ! उसमें धर्म में मछली की है। चित्र में पानी में मछली चलती है, उसमें पानी निमित्त है। ऐसे धर्मास्तिकाय, जड़-चैतन्य गति करे, उसमें निमित्त है। अधर्मास्तिकाय है। देखो ! अन्दर वृक्ष के नीचे आदमी बैठा है, वृक्ष के नीचे...। भगवान तीर्थंकर ने देखा हुआ अधर्मास्तिकाय एक पदार्थ है कि जो जड़ और चैतन्य गति करते हुए स्थिर होते हैं, उन्हें वह स्थिर (होने में) निमित्त कहलाता है। जैसे चलते हुए पंछी को वृक्ष (स्थिरता में) निमित्त है। ऐसा एक अधर्मास्तिकाय नामक तत्त्व है।

फिर देखो अन्दर वह पूरा लोक रखा है और वह घड़ियाल किया है। यह घड़ियाल, वह काल, कालचक्र है। वह द्रव्य है। देखो ! धर्म, अधर्म, आकाश और काल। आकाश वह पूरा लोक रखा है न अन्दर, उसके आस-पास का सब आकाश है। ये पाँच अजीव द्रव्य हैं। जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है। जीव की चाल... अन्दर चाल आया था न ? '**इनतैं न्यारी है जीव चाल...**' यह शरीर, भाषा, कर्म - इनसे जीव की चाल पृथक् है। वह तो जानने-देखनेवाला है। उसका स्वभाव जानने देखने का है और उसकी पर्याय अर्थात् परिणमन भी जानने-देखने की पर्याय है, उसे आत्मा कहते हैं। समझ में आया ? ऐसे आत्मा, त्रिकाल ज्ञानस्वभाव और वर्तमान परिणमन, उसकी चाल-गति-परिणमना ऐसा उसका जानना-दखना स्वभाव है। आत्मा को ऐसा न मानकर... आत्मा, पाँच द्रव्यों से जिसकी चाल भित है। जानना-दखना और जानने-देखने की पर्याय-ऐसी उसकी गति (अर्थात्) स्वभाव, पाँच द्रव्यों से अत्यन्त भिन्न है।

शरीर, कर्म, वाणी आदि से उत्पत उसकी जीव की चाल पृथक् है - ऐसा न मानकर... कहा है न ? '**ताकौ न जान विपरीत मान...**' वह पुद्गलादि द्रव्यों से पृथक् है, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उस आत्मा के स्वभाव की यथार्थ श्रद्धा नहीं करता। यह शरीर, कर्म और भाषा यह सब मैं हूँ, अन्दर यह आत्मा जानने-देखनेवाला और जानने-देखने की दशा, वही आत्मा है। पुण्य-पाप

के विकल्प, वे आस्रव में जाएंगे। दया, दान, काम, क्रोध के शुभाशुभभाव, वे आस्रवतत्त्व में जाएंगे। यह सब-कर्म, भाषा, यह सब अजीवतत्त्व में जाता है। इनसे, भगवान आत्मा-जानने देखने के जिसके परिणाम और स्वभाव, उसे ऐसा मानकर, उसे इस शरीर, वाणी, मन की क्रियावाला और ये क्रियाएँ आत्मा करता है - ऐसा मानना, यह जीव में मिथ्यादृष्टि की मिथ्याश्रद्धा है।

मिथ्यादृष्टि आत्मा के स्वभाव की यथार्थ श्रद्धा नहीं करता। '**अज्ञानवश विपरीत मानकर...**' है न इसमें ? '**विपरीत मानकर...**' मूल पाठ में ऐसा है। विपरीत मान करके '**शरीर ही मैं हूँ...**' समझ में आया ? उस चित्र मे किया है, देखो ! चैतन्य और शरीर दो बताये हैं। चैतन्य तो अरूपी ज्ञानघन जानने-देखनेवाला, उसके परिणाम वे चैतन्य है। वह शरीर बताया है, वह पुद्गल शरीर बताया है। शरीर पृथक् और चैतन्य पृथक्। दो न मानकर शरीर, वह मैं, शरीर की पर्याय (वह मैं)। इसे भी पर्याय कहते हैं। .. नहीं ? और उसकी होती जो पर्याय-स्थिति, वह मैं इस प्रकार जीव की भिन्न चाल को - जानने-देखने को न मानकर इसे (शरीर को) आत्मा मानता है। वह मिथ्यादृष्टि जीव दुःख के भाव का सेवन करता है; परिभ्रमण के कारण को करता है और वर्तमान दुःखस्वरूप जो मिथ्याभाव, वह उत्पन्न करता है।

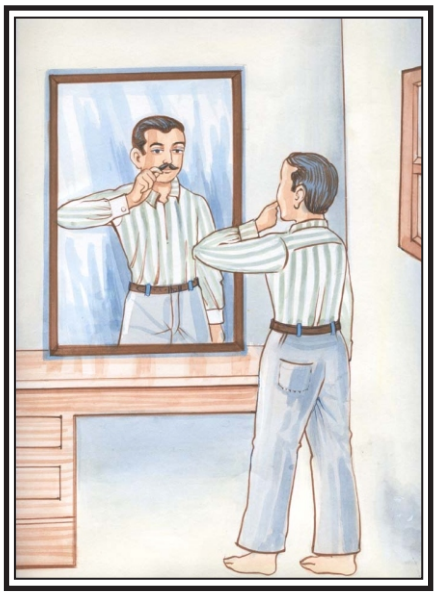

देखो ! एक दृष्टान्त इसमें दिया है। हम बहुत बार उस दर्पण का दृष्टान्त दैते हैं न प्रातः में ? यह मैं हूँ, यह मैं यह रहा। लिखा है इसमें ? देखो ! उस चित्र में है, देखो ! स्पष्ट दृष्टान्त देते हैं। इसने पहले से किया होवे तो क्या पता ? परन्तु मैं तो दृष्टान्त देता हूँ। देखो ! यह दर्पण। दर्पण में दिखता है, देखो ! दर्पण में, मूँछ ऐसे करके ऐसे देखता है। यह मैं हूँ। सवेरे देखता है न मुँह में ? ऐसे करे, ऐसे करे और टीका करे, टपका करे। वह अन्दर जो वस्तु दिखती है, वह तो पुद्गल है, जड़ है।

यह शरीर जड़ है, परन्तु दोनों को अपना मानता है कि यह सब क्रिया मेरी और यह मैं। यह जीव के विषय में इसकी बड़ी मिथ्यादृष्टि की भूल है। कहो, कुछ समझ में आया ? देखो ! किया है .... हाँ ! यह तो पहले से छपा होगा न ? यह तो यहाँ का दिगम्बर का है, हों ! अपने तो बहुत बार दृष्टान्त (देते हैं।) इन्होंने ऐसा दृष्टान्त दिया है। 'दर्पण में प्रतिबिम्ब को अपना ही स्वरूप समझता है' - अन्दर लिखा है, हाँ ! तुमने तो पढ़ा ही कहाँ है ?

यह भगवान आत्मा तो जानने-देखनेवाला त्रिकाली ज्ञानस्वभावी वस्तु है और उसकी चाल अर्थात् वर्तमान परिणाम भी उसके ज्ञान के, दर्शन के ही परिणाम, वह आत्मा है। ऐसे जीव को न मानकर, उस जीव को शरीर की क्रियावाला, भाषावाला, बोलनेवाला, उन कर्म को जड़ को बाँधनेवाला (मानता है)। समझ में आया ? जीव को ऐसा मानना, वह मिथ्यादृष्टि की जीवतत्त्व में बड़ी भूल है। आहा..हा..! कहो, यह तो अभी पहले की बात है, जीवतत्त्व की श्रद्धा की बात है। समझ में आया ?

'**विपरीत मानकर शरीर ही मैं हूँ, शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ...**' हाथ हिलाना, बोलना, ऐसे करवट बदलना यह करना मुझसे होता है - ऐसा माननेवाला शरीर को ही आत्मा मानता है। कहो, यह बात सही होगी ?कौन घुमाता (परिवर्तित करता) होगा इस शरीर को इधर से उधर करवट ? हैं ? यह पैर ऊँचे कौन करता होगा ? यह पैर तो जड़-मिट्टी है। अन्दर जाननेवाला आत्मा तो ज्ञानचालवाला है। जाननहार...जाननहार... जाननहार... उस समय देह में जैसी क्रिया होती है, वैसी उसे जाननेवाला आत्मा है। जाननेवाला है, उस क्रिया का करनेवाला नहीं। परन्तु वह शरीर की क्रिया पैर घुमाया, ऐसा किया, ऐसा किया, ऐसा किया, खाते समय भी जीभ ऐसे फिराये, ऐसे (करे) यह सब क्रियाएँ शरीर की पर्याय जड़ की अवस्था है। उसे अज्ञानी मूढ़, जीवतत्त्व को भिन्न न मानकर, उसी (शरीर की) क्रिया को करनेवाला मानता है। कहो, समझ में आया ?

'**मैं अपनी इच्छानुसार शरीर की व्यवस्था रख सकता हूँ...**' अर्थात् ? ठीक पथ्य-आहार लेता हूँ, ठीक से दूध पीता हूँ, दवा ठीक से लेता हूँ, सवेरे में खाते समय भी थोड़ा हिंगाष्टक ठीक से लेता हूँ और चबा-चबाकर खाता हूँ (कारण कि) पेट में दाँत नहीं हैं इसलिए।

शरीर की स्वच्छता रखना मेरा अधिकार है, इस कारण मैं शरीर की स्वच्छता रख सकता हूँ। वह मूढ़ जीव है। इस शरीर की इस प्रकार की दशा रहना, वह जड़ के कारण है; आत्मा के कारण नहीं। आत्मा की चाल तो अलग है। ऐसा यहाँ पर कहा है न ? क्या कहा है ? देखो न ! भिन्न चाल है - ऐसा कहा है। 'जीव चाल' - '**इनतैं न्यारी है जीव चाल...**' समझ में आया ? किनसे (न्यारी है) ? यह सब परमाणु, कर्म, शरीर, वाणी, दाल, मात, सब्जी, पैसा सब चीज़े, इनसे तो (जीव) पृथक् चीज़ है पृथक् चीज़ पृथक् की पर्याय को अपनी मेने तो उसे पृथक् वस्तु की श्रद्धा नहीं है। मैं आत्मा हूँ - उसे ऐसी मान्यता का भी पता नहीं है। मूढ़ अपने जीव के स्वभाव को ही भूल गया है। कहो, कुछ समझ में आया ?

कहते हैं, '**मैं अपनी इच्छानुसार शरीर की व्यवस्था रख सकता हूँ...**' अभी खुराक छोड़ दी है क्योंकि ठीक व्यवस्था (रहे), हमेशा शेर-दो शेर दूध पीऊँ। दो शेर सवेरे, दो शेर शाम का। इसलिए शरीर की अवस्था यह रखी रखाई है। नहीं आता, नहीं आता ऐसा अज्ञानी मूढ मानता है। मूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि, जीव के स्वभाव को नहीं जानकर, पर का विकारी दशा, शरीर की अवस्था को मेरे से रहती है और मैं ध्यान रखता हूँ, इसलिए शरीर ऐसा रहता है। भाई ! धूल में आरोग्य उसके घर रह गया। वह तो शरीर का जो परमाणु का पुद्गल है, वह पुद्गल है उससे जीव की चाल न्यारी कही है। उसकी चाल - वह चलता है, उसकी पर्याय तो उससे चलती है। वह आत्मा से चलती है, आत्मा निरोग रख सकता है, आत्मा सरोग कर सकता है, आत्मा बाल तोड़ सकता है, आत्मा हाथ ऐसे-ऐसे कर सकता है, आत्मा बोल सकता है, आत्मा जीभ फिरा सकता है - (ऐसा) तीन काल में नहीं है। क्या है ? वह तो जड़ की पर्याय होती है। आत्मा तो जानता है कि एसा होता है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- .. का अर्थ क्या ? बात क्या कही ? देखो ! '**इनतै न्यारी है जीव चाल...**' जितने पुद्गल की पर्याय वर्तमान वर्तती है, उससे भगवान आत्मा सर्वथा भिन्न है - ऐसा न मानकर, इन सब क्रियाओं का मैं करनेवाला हूँ - ऐसा माननेवाले जीव की दृष्टि विपरीत है, मिथ्यात्व है, असत्य है, दुःखस्वरूप है, परिभ्रमण का कारण है। चौरासी के अवतार के परिभ्रमण का कारण

यह मिथ्याश्रद्धा है। ओ..हो..हो..! कहो, समझ में आता है कुछ ?

'**ऐसा (मानकर) शरीर को ही आत्मा मानता है।**' अर्थात् किसी भी प्रकार से शरीर की, वाणी की दशा, वह मेरा ही कार्य है; वह मैं हूँ। मेरा चैतन्य भित ज्ञानानन्द है - ऐसा न मानकर उसे ही (शरीर को ही) आत्मा मानता है। इस प्रकार हाँ ! मैं कर सकता हूँ अथवा मेरे अस्तित्व में - होनेपने में वह चीज़ है। इससे वह मेरे होनेपने में वह होने से मैं उसका अधिकारी हूँ, व्यवस्थित कर सकता हूँ। कहो, समझ में आया ? कितने ही लोग ऐसे होते है न कि ऐसे धीरे-धीरे चलते हैं (क्योंकि) नाभि में दबाव न लगे। है ? यह सब देखा है। यह सब नाम-ठाम का सब पता है। एक वृद्ध था, वह बहुत धीरे-धीरे क्यों चलता है ? (तो उसने कहा) - धीरे धीरे चलेंगे तो नाभि में दबाव नहीं लगेगा और श्वास कम रहे तो आयुष्य बढ़ता है। ऐ...ई...! मूढ़ है। कहा ऐसा का ऐसा। बुद्धि के लट्ठ जैसे गाँव-गाँव में भरे हैं। समझ में आया ? ऐसे कहलाये, फिर बाहर के होशियार व्यक्ति कहलायें, हम ऐसे हैं। धीरे-धीरे (चलते हैं)। श्वास अधिक आ जाएंगे तो आयुष्य कम हो जाएगा। श्वास थोडे ज्यादा धीरे-धीरे लेंगे, थोड़े लेंगे तो श्वास बढ़ जाएंगे। इस प्रकार शरीर की अवस्था को आत्मा रख सकता है।- ऐसा मानता है। भाई !

मुमुक्षु :- रख सकता है।

उत्तर :- उसके समक्ष तो दृष्टान्त दिया है। यहाँ क्या कहते हैं ? देखो !

पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतैं न्यारी है जीव चाल,
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देहमें निज पिछान।।३।।

ऐसा करके। मान और करि साथ लेना है। ऐसे शब्द में मान ऐसे लाना - '**ताकों न जान विपरीत मान, मान करि करै देह में निज पिछान।**' विपरीत मानकर देह में मैं हूँ, शरीर मैं, वाणी मैं - ऐसा अज्ञानी मूढ़ अनादि से आत्मा को न पहिचानकर पर को अपना (मानता है) क्योंकि अस्तित्व स्वयं ज्ञानस्वरूप कौन है - उसका पता नही है, इसलिए कहीं इसका अस्तित्व - होनापना स्वीकार करना पड़ता है। यह इन्द्रिय से ज्ञान करता है, इसलिए यह सब, यह सब, यह सब (मैं करता हूँ) - ऐसा मिथ्यादृष्टि अज्ञानी, भले जैन नामधारक हो; सामायिक और प्रौषध आदि क्रियाएँ करनेवाला हो, परन्तु इस प्रकार शरीर की क्रिया ऐसी (होवे)... भाई ! यह शरीर

की क्रिया मैंने की - ऐसा करके, कहते हैं कि मूढ़ है। वह शरीर को ही आत्मा मानता है। समझ में आया इसमें ?

अनादि से जीव की चाल ही पाँच द्रव्यों से भिन्न है। है ? पुस्तक है ? वहाँ बोर्डिंग में भी नहीं ? पता नहीं यहाँ बढ़ जाती है, सब वहाँ से लाते थे न पहले। अब कल कहाँ... ? कल तो सोमवार है। सोमवार को छुट्टी है ? कहो, कुछ समझ में आया ? जब यहाँ सवेरे ऐसा चलता है, तब तक सवेरे आने वाले वहाँ से लेते आना। यहाँ कितने पूरे करे ? वहाँ पड़े वह वहाँ संग्रहित करना हो ? कहो, समझ में आया इसमें ?

'**देह में निज पिछान,...**' पुद्गल में अपनी पहिचान करता है। यहाँ यह किसलिए लिया ? वे चार तो अरूपी है न ! धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश और काल अरूपी है, इसलिए उनमें तो इसकी नजर पड़ती नहीं। यह नजर पड़ती है इस शरीर में। इस शरीर की स्वच्छता और यह रखें, और यह करे और यह किया, मैंने किया, अमुक किया... भाई ! अपने रखने से शरीर रहता है, और मिटाने से मिटता है - ऐसी बातें लोग करते हैं। स्त्री भी ऐसी सरीखी होती है। हम खाने-पीने में ध्यान रखेंगे तो शरीर निरोग रहेगा और यह अभी तक अमुक को निरोग शरीर रहा है (क्योंकि) उनकी हिफाजत बहुत अच्छी थी। भाई ! यह ठीक होगा ? तुम्हारी मा का बहुत शरीर है। देखो ! इतने वर्षों में भी। है ? यह जानकारी होगी इसलिए न ?

मुमुक्षु :- काम करते है।

उत्तर :- धूल में भी काम करे इसलिए नहीं। काम करे वह तो राग किया, दूसरा क्या किया इसने ? घीसता (कार्य के बोझ में) रहा है। भेंस और गोबर के (संभालने/देखभाल में) ... वह तो जड़ की क्रिया है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- कहो, ठीक ! यह अपनी पोल खोल रहा है। यह बात भी मिथ्या है। काम अर्थात् क्या ? यह तो अन्दर राग और द्वेष करता है। देह की क्रिया जो होती है, उससे यहाँ शरीर में भूख लगती होगी ? समझ में आया ? यह भी लोग बोलते हैं, भई ! सवेरे उठकर दस शेर दल डालना, भूख लगेगी - ऐसा करके सास को बहू को काम सौंपना होता है न (इसलिए) अन्दर ललचाती

है। शरीर ऐसा होता है। जल्दी सवेरे चार बजे उठकर दस शेर दल डालिये। चने की दाल दले तो अन्दर बहुत कस रहे... करे तो बहू... यह सब सुना है, हाँ ! एक-एक बात, है ? हमने कहाँ कर लिया ? परन्तु यह तो सुना हो कि लोग ऐसा बोलते हैं। बोलते हों, सासु बहू को कहे, जल्दी उठ बा, जल्दी उठ, शरीर हल्का रहे, पूरी रात (सोते हो इसलिए) जल्दी दस शेर गेहूँ दल डालें तो काम भी हो और शरीर भी अच्छा रहे।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- धूल में भी उसके कारण नहीं होता। दोनो जन मूर्ख हैं, ऐसा यहाँ तो कहेत हैं। दुनिया की बहुत सारी बातें सुनी हो न ? हमने तो अनेक प्रकार की (सुनी है।) तुम सब तो नाचे हो, यहाँ तो हमने तो नाच को देखा है। कैसा नाचते है ? ... कितनी बाते भी अन्दर भ्रमणा करावे ! आहा..हा..! यही यहाँ कहते हैं, देखो !

किसी प्रकार विपरीत मान करके, - ऐसा कहते हैं। '**करे देह में निज पिछान -**' कारण कि देह दिखती है; इसलिए देह, वाणी, अन्दर कर्म आदि सब कार्य मेरे हैं और यह सब काम हम करें यह तो अपना कर्तव्य है न ! - ऐसा करके, जीव को जाति ज्ञानानन्द-जाननेवाला-देखनेवाला है, उसके अस्तित्व को नहीं मानता, मूढ़ मिथ्यादर्शन का सेवन करता है। भाई ! यह प्रौषध, सामायिक करनेवाले भी यदि ऐसा माने तो वे मिथ्यादृष्टि और मूढ़ है - ऐसा कहते हैं, उन्हें प्रौषध और सामायिक नहीं है - ऐसा कहते हैं, भाई !

मुमुक्षु :- मिथ्यादर्शन ...

उत्तर :- मिथ्यादर्शन अर्थात् असत्य मान्या, झूठी मान्यता। इसलिए तीन बोल वर्णन किये। असत्य मान्यता अर्थात् दुःख का कारण अर्थात् दुःखरूप और परिभ्रमण का कारण। ऊपर आया था न ? भाई ! भ्रमत, नहीं ? उसमें से सब कहा है। '**भ्रमत मरत दुःख जन्म मरण...**' एक तो भ्रम करता है, इससे चार गतियों में भ्रमेगा; और स्वयं दुःखरूप है और दुःख का कारण है। मिथ्याश्रद्धा, यही महान पाप है। इस पाप का त्याग न करे, तब तक दूसरी किसी चीज़ का त्याग, अन्दर राग का त्याग नहीं हो सकता। तीन (गाथा) हुई, तीन। (अब), चार।

मिथ्यादृष्टि का शरीर तथा परवस्तुओं सम्बन्धी विचार

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव;
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण।।४।।

अन्वयार्थ :- [मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यादर्शनके कारण से मानता है कि] (मैं) मैं (सुखी) सुखी (दुखी) दुःखी, (रंक) निर्धन, (राव) राजा हूँ, (मेरे) मेरे यहाँ (धन) रुपया-पैसा आदि (गृह) घर (गोधन) गाय, भैंस आदि (प्रभाव) बड़प्पन [है; और] (मेरे सुत) मेरी संतान तथा (तिय) मेरी स्त्री है, (मैं) मैं (सबल) बलवान (दीन) निर्बल, (बेरूप) कुरूप, (सुभग) सुन्दर, (मूरख) मूर्ख और (प्रवीण) चतुर हूँ।

भावार्थ :- (१) जीवतत्त्वकी भूल :- जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है, उसे अज्ञानी जीव नहीं जानता और जो शरीर है सो मैं ही हूँ, शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ, शरीर स्वस्थ हो तो मुझे लाभ हो, बाह्य अनुकूल संयोगोसे मैं सुखी और प्रतिकूल संयोगोसे मैं दुःखी, मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप, मैं सुन्दर-ऐसा मानता है; शरीराश्रित उपदेश तथा उपवासादि क्रियाओं में अपनत्व मानता है-इत्यादि[१] मिथ्या अभिप्राय द्वारा जो अपने परिणाम नहीं है उन्हें आत्मा का परिणाम मानता है वह जीवतत्त्व की भूल है।।४।।

---

१. जो शरीरादि पदार्थ दिखाई देते हैं वे आत्मा से त्रिकाल भिन्न हैं, उनके ठीक रहने या बिगड़ने से आत्मा का कुछ भी अच्छा-बुरा नहीं होता; किन्तु मिथ्यादृष्टि जीव इससे विपरीत मानता है।

मिथ्याद्रष्टि का शरीर तथा परवस्तुओ सम्बन्धी विचार। है इसमें ?

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव;
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीण।।४।।

देखो इसमें द्रष्टान्त भी दिया है अन्दर, हाँ ! एक स्त्री है और एक जवान ऐसे कोट पहनकर, एक सरीखे बटन यहाँ से यहाँ तक है न ? देखो न, अन्दर है। उसके जेब में हाथ, स्त्री साथ खड़ी है, वह लड़की है, हाथ ऐसा पकड़ा है। ओ...हो..! मेरी स्त्री है।

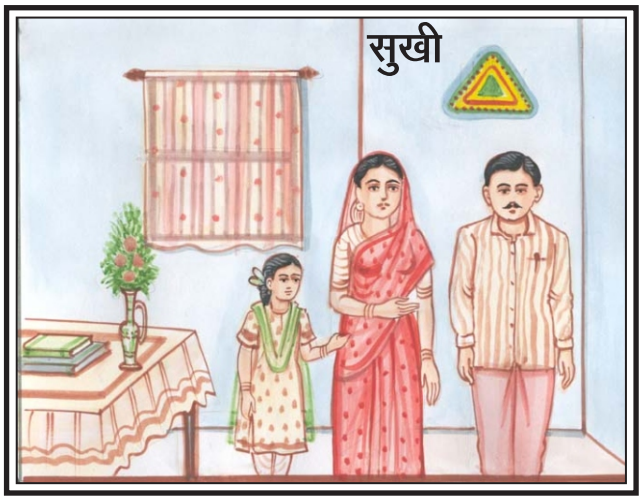

'**मिथ्यादृष्टि जीव, मिथ्यादर्शन के कारण से...**' विपरीत मान्यता-मिथ्याशल्य के कारण से '**मैं सुखी...**' देखो, लो ! ऐसा सरीखा कोट-बोट पहिना हो, शरीर निरोग हो ऐसे निकले, शाम को खा-पीकर घूमने निकले। घण्टे-दो घण्टे फुरसत हो और स्त्री साथ हो और लड़का-लड़की साथ हो, अज्ञान की हिलोरे मारता है ! मिथ्याश्रद्धा-मान्यता करके और मैं सुखी (हूँ) - ऐसा माननेवाला मूढ़ जीव है, कहते हैं। कहो, भाई ! हम सुखी हैं। सुखी की व्याख्या क्या ? सुखी का स्वरूप क्या ? सुख तो आत्मा के आनन्द में है। आत्मा के आनन्द में सुख है। यह मिथ्याश्रद्धा-ज्ञान निकाल दे, तब आत्मा का आनन्द आयेगा। उसमें आनन्द है और बाहर के संयोगों मैं सुखी हूँ - ऐसा माननेवाला जीवतत्त्व को भूलता है। लो ! यह मिथ्यादृष्टि, शरीर को और परवस्तु को अपनी मानता है। यह सब समझने योग्य बात है। पढ़ा है तुमने किसी दिन ? भाई !

'**मैं सुखी...**' देखो ! ऐसे कोट-बोट, पेन्ट ठीक से (पहिने हो) व्यवस्थित मोटर-बोटर नहीं हो, वरना उसमें रखे। यह सब डाला तो बहुत है, हाँ ! देखो ! यह सब मकान और मकान का वह

होता है न ? चोखंडे; अच्छा मकान बनाया हो न ? ऐसा चौखंडेवाला है न ? ऊपर जाली, इसके ऊपर बहुत दृष्टान्त अन्दर दिये हैं, हाँ ! तिजोरी की है, हं, ऐसे, देखो ! यह सब मकान और सब पड़ा हो, फर्नीचर। चारों तरफ सुसज्जित, सब ... समझे न ? लकड़ी कोमल की हो, पालीस ... पालीस। यह सीडियों में लकड़िया बिछायी हो और कपड़े ऐसे बिछाये हों और ऐसी आती है न ? कुर्सियाँ। हम सुखी है, सब प्रकार से सुखी हैं। हमारे हाम, दाम और ठाम है। हाम-हमारे कमाई का पुरुषार्थ भी है; दाम-पैसा भी है; ठाम-मकान और वखार और घर भी है। मूर्ख है, कहते हैं। समझ में आया कुछ ?

'**मैं सुखी ...**' ऐसा माननेवाला जीव को भूल गया है। मैं एक आनन्दकन्द ज्ञानस्वरूप हूँ - ऐसे जीव को भूलकर बाहर की सामग्री से (अपने को) सुखी मानता है, यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। '**मैं दुःखी...**' अरे...! मेरे जैसा कोई दुःखी नहीं, हाँ ! दूसरे सब निरोगी घूमते हैं, अस्सी-अस्सी वर्ष का शरीर और यह मुझे पचास वर्ष में रोग आया; महादुःखी हूँ, बापा ! बहुत दुःखी हूँ; मुझे कोई संभाल करनेवाला नहीं होता, घर में लड़का नहीं होता, दो लड़के कमाने गये, स्त्री ठीक नहीं; दुःखी.. दुःखी (हूँ।) मूढ़ हो, भाई ! भगवान ! तू तो जानने-देखनेवाला आत्मा है और इस संयोगी चीज तथा प्रतिकूलता में मुझे दुःख होता है - ऐसा मानता है (तो) मिथ्यादृष्टि मूढ़ असत्य श्रद्धा का सेवन करता है और असत्य दुःख के भाव का सेवन करता है और दुःख के कारण का सेवन करते हुए दुःख उत्पन्न करता है और परिभ्रमण का कारण करता है। कहो, समझ में आया ?

'**मैं रंक, गरीब...**' हम तो भाई गरीब मनुष्य है; पाँच पैसे भी नहीं मिलते। देखो ! उसमें लिखा है, हों ! देखो ! गरीब लिखा, गरीब लिखा है अन्दर, देखो ! गरीब मनुष्य। मैं गरीब हूँ। किस प्रकार ? पैसे में ? की नहीं। शरीर से, स्त्री, पुत्र और सब प्रतिकूलता (है), इसलिए गरीब-गरीब हूँ। मूढ़

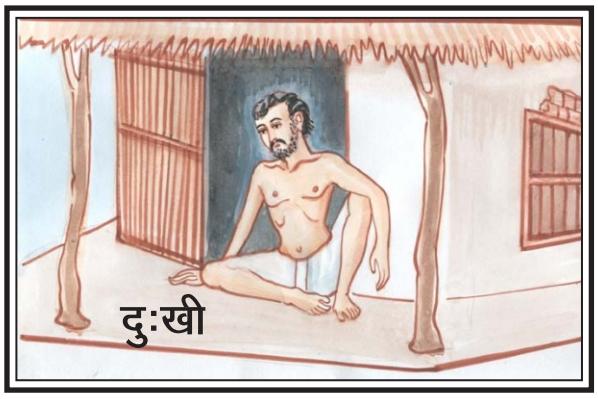

है,..! बाहर की सामग्री कम (हो,) इसमें गरीबी कहाँ आ गयी ? महा मूल्यवान ज्ञानानन्दस्वभाव सम्पत्ति का स्वामी आत्मा, वह बाहर की प्रतिकूलता की सामग्री से (अपने को) गरीब माने (तो) मिथ्यादृष्टि मूढ़ जीव है, कहते हैं। उसे आत्मा की श्रद्धा का पता नहीं है। आहा..हा..! बहुत कठिन बात, भाई ! ऐसी बात लोगों को सुनना कठिन पड़ती है। वे (तो) लोग (ऐसा कहते हैं) ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो। करे नहीं (कुछ), एक रजकण बदल नहीं सकते; करो, करो करते हैं। स्वयं मिथ्यात्व का सेवन करते हैं और दूसरों को मिथ्यात्व को सेवन कराते हैं। कहो, समझ में आया ?

मैं गरीब, मैं राजा-ऐसा सब डाला है न ? इतना अधिक कहाँ से डाले ? एक दृष्टान्त दिया। मैं राजा हूँ। मेरे घर एक वर्ष की (एक) लाख की तो आमदनी है। इतनी हमारे जागीर है। लाख तो अभी बहुत काम नहीं आते। क्यों ? (इन भाई के) लड़के जैसों को तो अभी लाख-बाख की क्या गिनती ? परन्तु पाँच लाख, दस लाख की हमारी आमदनी है, हमारे ऐसा है, हमारे सब सुविधा है; हमारा पुण्य अभी बहुत फिरा है। पुण्य कब तेरा था ? वह तो रजकण था, धूल और धूल के (निमित्त से) प्राप्त हुई सामग्री धूल है। वह मेरे और हम राजा (है), कहते हैं कि वह जीव भूला है। जो चीज संयोग में आयी, उसे अपनी मानकर असंयोगी चीज़ को भूला है। कहो, समझ में आया कुछ ? दुःखी, गरीब, राजा।

'**मेरे रुपये...**' लो ! '**मेरे धन...**' मेरे रुपये, मेरे रुपये, मेरे रुपये...। हैं ? एक साधु था। त्यागी हो गया। रुपये कोई ले गया होगा। उसके नाम से संथारा किया, मर गया। ऐसे के एसे मूढ़। बाहर निकला तब दूसरे प्रकार से निकला था, फिर छोड़ा। ममता (तो थी, यह मेरा पैसा, कोई खा गया होगा। क्योंकि घर में तो कुछ रखे नहीं न ? जहाँ रखे वह खा गया। फिर संथारा किया; नहीं आवे तब तक खाऊँ नहीं। मर गया। वहाँ कहाँ उसके पास थे कि दे। समझ में आया ?

कहते हैं, '**मेरे रुपये.. पैसे...**' इतना संग्रह करके रखा है, गुप्त रखा है। पत्नी को भी पता नहीं और पुत्र को भी पता नहीं, इतना रखा है। मरणपूंजी रखी है अन्दर। मूढ़ ! पैसे के रजकण, वह तो जड़-मिट्टी है। मेरे पैसे, मेरे रुपये-यह माननेवाला मूढ़ मिथ्यादृष्टि जीव है। उसे आत्मा की श्रद्धा का पता नहीं है। यह तो बहुत कठिन पड़ता है, हाँ ! तब (क्या) हमें बाबा हो जाना चाहिए ? परन्तु बाबा ही है, सुन न ! रजकण कब तेरे हैं ? एक रजकण भी तेरा नहीं है और उसे

अपना माने तो महामिथ्यादृष्टि दुःख के भाव को करता है और दुःख के भाव में परिभ्रमण करेगा।

'**(गृह)...**' हमारे घर है, घर। महीने में पाँच हजार का किराया हमारे सहज में आता है - इतने हमारे मकान हैं, ऐसा है, वैसा है। बात करे तो मीठाश से करे। हमारे इतना है। हमारे घर है, हमारे घर है। पहले ! तेरा घर तो यहाँ रहा। वहाँ तेरा घर कहाँ था ? जड़ का घर तेरा (है) ? इतने बंगले बनाये हैं। इन्हें तो तीन बड़े बंगले हैं। एक बंगले में रहते हैं और दो बंगले किराये पर देते हैं। सब उसमें क्रम से आना चाहिए न ! कहो, समझ में आया ? गरीब मनुष्य को गरीब लो न एक झोपड़ी होवे, उसे श्रृंगार करता है। पुत्र का विवाह हो तब उसे जरा ऐसा श्रृंगार करता है। ऊपर कपड़े का क्या कहलाता है वह ? तोरण ! अर..र..र..! मूढ़ ! यह जीव भगवान आत्मा तो जानने-देखनेवाला है। जानने-देखने के स्वभाव से भरपूर और जानने-देखने की परिणतिवाला तत्त्व है। उसे एसे 'घर मेरा' (माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है - (ऐसा) कहेत हैं।

'**(गोधन) गाय-भैंस...**' लो ! समझ में आया ? गोधन का (चित्र) बनाया है न ? नहीं ? इसमें नहीं होगा। गोधन है। गोधन-गाय और भैंस आदि। इतना शब्दार्थ है। गाय, बैल आदि। नीचे शब्दार्थ है। गाय, भैंस, बकरा, ऊँट, हाथी, तोता, कबूतर।

मुमुक्षु :- इसमें कहीं मोटर नहीं है।

उत्तर :- वह मोटर इसमें आ जाती है, इतनी तो हमारे मोटर है। लाख-लाख रूपये की मोटर आती है या नहीं ? ऐ...ई ! उसका क्या नाम आता है ? शेरोलेट ! शेरोलेट अर्थात् क्या ? कौन जाने ? उसमें एक भी अक्षर अपनी गुजराती का नहीं है। लाख रुपये की मोटर। हमारे चार मोटर लाख (-लाख) की है और चालीस-चालीस हजार की... है और वह धूल है। हमारे है, हमारे है, मर गया। परन्तु तेरा कब (था) ? एक रजकण भी नहीं। जीव में परवस्तु को अपनी मानना, वही महामिथ्यादर्शन और मिथ्याज्ञान है। यह बात जीव को कठिन पड़ती है। उसमें अभी की हो..हा और मौजमस्ती का काल। ऐसा कमाना और ऐसा खाना और ऐसा पीना और ऐसा करना। धूल में भी नहीं कर सकता। सुन न !

मुमुक्षु :- खाना या नहीं खाना ?

उत्तर :- कौन खा सकता है ? धूल है, यह तो जड़ है। उसके रजकण आते और जाते हैं।

आत्मा को राग होता है। यह जड़ की क्रिया आत्मा नहीं कर सकता। खाने-पीने की (क्रिया) कभी नहीं कर सकता। यह सब तो ऊपरी है। कहो, समझ में आया ?

'**(प्रभाव) बड़प्पन...**' हमारा। संघ के सेठ है, संघ के प्रमुख हैं, संघ में हमारा पहला नाम (होता है), संघवी रूप से,सेठ रूप से, प्रमुखरूप से, मन्त्री रूप से। क्या नाम होगा ? सेनापति रूपसे, दीवानरूप से। हम दीवानसाहब के घर के हैं। यह हमारा बड़प्पन (है।) भगवान ! इससे तू बड़प्पन माने यह तो मिथ्यात्व है, भाई ! आत्मा का बड़प्पन तो अन्दर ज्ञानानन्द स्वभाव से बड़प्पन है। पर वस्तु से बड़प्पन माने यह मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। समझ में आया ? देखो ! 'दौलतरामजी'ने गृहस्थदशा में भी बात कितनी स्पष्ट की है।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह रहा न ! अन्दर लिखा है, यह क्या कहते हैं ? '**मैं सुखी दुःखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव...**' है या नहीं ? पड़ा है या नहीं इसमें ? आठ लड़को का पिता हूँ, बारह पुत्रो का (पिता हूँ), हम बारह भाई हैं, अमुक हैं, हमारे इतने पैसे हैं, धूल है। अभिमान... पर वस्तु का अभिमान करके चैतन्य को भूल गया। भगवान आत्मा तो इस वस्तुओ का जानने-देखनेवाला है - ऐसा कहना, यह व्यवहार है। समझ में आया ? स्वयं स्वयं का जानने देखनेवाला ऐसा चैतन्यस्वरूप, उसे भूलकर पर को अपना माने, वह असत्य, मिथ्यादृष्टि का लक्षण है। इस प्रकार मूढ़ जीव चार गतियों में परिभ्रमण कर रहा है।

'**मेरी सन्तान...**' बोले तो अन्दर से ऐसा (बोले कि) महाराज ! मेरा पुत्र है। दस हजार वेतन है। एल.एल.बी.में कितने वर्ष से पास हुआ है और बहुत दिमाग, बहुत दिमाग। एक व्यक्ति तो कहता है, यह मेरी पुत्री ऐसे पढ़ी है... परन्तु अब क्या तुझे दिखावा कितना करना है ? वे इस भाई के मित्र थे। बहुत वर्ष की भी थी न ? यह मेरी पुत्री, यह मेरी पुत्री-इतना पढ़ी है.. परन्तु हमारे पास तुझे कितनी बात करनी है ? पुत्री भी तेरी नहीं है और पढ़ी तो उसमें भी तुझे क्या है ? और पढ़ी है वह मूढ़ता की - अज्ञान की पढ़ाई है सब। सब संसार की पढ़ाई अज्ञान की, मूढ़पने की पढ़ाई है। समझ में आया ? यह तो सब पोल खोल देते है, हाँ !

मुमुक्षु :- यह खोलने जैसा है।

उत्तर :- ऐसा है। हैं ? भाई ! हमारी सन्तान। भई लो ! अच्छा पुत्र हो तो मनुष्य को पोरस तो चढ़ता है न ! है ?

मुमुक्षु :- मीठास...

उत्तर :- मीठास अलग होती है। स्त्री बैठी होवे तो बातें करे, यह हमारे ऐसे है। हमारी मौसी का लड़का है और बहुत पैसेवाला है। यहाँ भले ही पाई न देता हो परन्तु उसे अन्दर ... है। हमारे साले की बहू है, यह गाँव की बड़ी आयी है... परन्तु तुझे क्या ? हमारे साले की बहू। ओहो...हो..!

मुमुक्षु :- नशा चढ़ गया है।

उत्तर :- नशा चढ़ गया है। देखो ! हमारी नात-जाति की स्त्री इतनी बड़ी ! परन्तु तू कौन ? तू स्त्री नहीं और स्त्री का शरीर है, वह तो उसका आकार है। शरीर का आकार स्त्री है। आत्मा स्त्री है ? भगवान आत्मा (तो) स्त्री नहीं, पुरुष नहीं, देह नहीं, वाणी नहीं, कर्म नहीं। आहा...हा...! अद्भुत बात, भाई !

'**मेरी सन्तान...**' मेरी सन्तान। समझे न ? पुत्र-पुत्रियाँ। '**मेरी स्त्री...**' दूसरे घर में भले होगी दूसरे की स्त्री, परन्तु मेरी स्त्री अलग प्रकार की, खानदान की... खानदान की... क्या है परन्तु ? तेरी सेवा बहुत करती है इसलिए किसकी सेवा करती है ? धूल की, शरीर की ? समझ में आया कुछ ? आहा...हा...! यह सब खुल्ला किया होगा, भाई !

मुमुक्षु :- सत्य है।

उत्तर :- सत्य है ? लो ! फिर सेठिया सत्य कहते हैं।

'**मेरी स्त्री...**' आहा...हा...! अरे...! बापा ! तेरी स्त्री कैसे ? भाई ! तेरी होवे तो तुझसे भित रहे नहीं। या तो उसे छोड़कर तू जाए या वह तुझे छोड़कर जाए। हें ? तेरी चीज़ कहाँ थी ? चैतन्यमूर्ति भगवान आत्मा ज्ञानानन्द सम्पदा से भरपूर है, उसे स्वयं का न मानकर ऐसी वस्तु को (अपनी) माने, वह चैतन्य को भूल गया है। अपने चैतन्य की श्रद्धा उसे नहीं है। ऐसे आत्मा... आत्मा माने- ऐसा नहीं। हम आत्मा (बोले) - ऐसा नहीं। आत्मा ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्यमूर्ति स्वभाव है और यह सब चीज़ें मेरी नहीं हैं। मैं मुझमें हूँ और मेरा आनन्द और ज्ञानस्वभाव मेरा है - ऐसा माने, उसे आत्मा है। ऐसा सब माने, पर को अपना माने और फिर मैं आत्मा (हूँ ऐसा)

माने - ऐसा हो नहीं सकता। समझ में आया ?

'**मैं बलवान...**' देखो न ! शरीर में बलवान होता है न ? तीन-तीन, चार-चार लड्डु चढाता (खाता) हो, एकदम पचा दूँ - ऐसा कहो समझ में आया ? एक व्यक्ति, पाँच-छह व्यक्तियों का दूधपाक किया, वह खा गया। भाई फिर उसे शोच.. समझे न ? एक था, गाँव में एक था। तुम्हारे था ? ए..इ..! सब पता है। नाम तो सबके सुने होंगे न ? पाँच व्यक्तियों का बनाया समाप्त। फिर रोटी नहीं, दूधपाक नहीं। ... परन्तु... मुझे किसलिए पहले खाने बैठाया ? आहा...हा...! एसे सब। और फिर (ऐसा कहे हम) दो सामायिक करते हैं और प्रोषध करते हैं... परन्तु तुझे किसकी सामायिक आयी ? अभी आत्मा कौन है ? पर का अभिमान मिटा नहीं, पर से भितता का भान नहीं, सामायिक आयी कहाँ से ?

मुमुक्ष :- सामायिक...

उत्तर :- सामायिक कहना किसे ? आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है। उसमें राग भी मेरा नहीं है, देह भी मेरी नहीं है, कोई जड़ की क्रिया मेरी नहीं है - ऐसे स्वरूप की श्रद्धा करके, अनुभव करके उसमें स्थिर हो, आनन्द में स्थिर हो, उसे सामायिक कहते हैं। सामायिक क्या आँखे (बन्द) करके दो घड़ी बैठ गये (तो) उसे सामायिक हो गई ? (वह तो) मिथ्यादृष्टि की सामायिक है।

'**मैं बलवान...**' एक मुक्का मारूँतो खून निकाल दूँ ऐसा कितने ही बोलते हैं न ? एक मारूँ न ऐसे ठीक से... परन्तु तू कौन है जो मारेगा ? वह तो जड़ है, मिट्टी है भाई ! एक मारूँ तो खून ऊगलवा दूँ, खून ऊगलवा दूँ, मूर्ख तो अभिमान भी (कितना) ? हमारे (यहाँ) एक लड़का था, हाँ ! 'पालेज'में साथ में दुकान थी। लड़का हम दो को उठाले,... ! अठारह वर्ष का था परन्तु हम बारह-बारह, चौदह वर्ष के, दोनों को ऐसे हाथ से उठाले और ऊँचा करके ऐसे घूमाये, हाँ ! .. ऐसा ! और जब मरने पड़ा... हाय...! मैंने नजरों से देखा है। दुकान के साथ रहता था। 'पेटलाद' का था। दुकान के साथ तम्बाकू की दुकान थी। एक जवान दो व्यक्तियों को उठाये, हाँ ! ऐसे हाथ से ऊँचा करे और घुमाये। वह बीमार पड़ा। विवाह किया और फिर बीमार पड़ा, मरने की तैयारी... मैं देखने गया था। कैसे हो ? बोलने की शक्ति नहीं, मरने की तैयारी। रात्रि में मर गया। फिर... बोल गया था। वहाँ है न 'पालेज' ? एक गाँव है, कैसा ? नदी के किनारे। वहाँ ले गये। आहा...हा...! उसे देखा। एक बार रात्रि में लड़को को ऊँचा करनेवाला और वह फिर ऊँचा

हो गया। बापा ! यह शरीर तेरा नहीं है, यह शरीर का बलवानपना तेरा नहीं है।

'**(दीन)...**' हम निर्बल है, बापू ! हममें मक्खी उड़ाने की ताकात नहीं है। परन्तु यह कमज़ोरी तो जड़ की है, इसमें तेरी कहाँ आई ? आहा...हा...! समझ में आया ? '**(बेरूप) कुरूप...**' कुरूप। छोटी उम्र से यह शीतला निकली और यह सब घंटा दो घंटा जैसा मेरा रूप हो गया। मेरा रूप - ऐसा बोलता है, परन्तु यह तो जड़ का है; तेरा कहाँ से आ गया ? शर्माता है। किसी की आँख ज़रा फूटी हो तो चश्मा-वश्मा आड़े रखता है। स्त्री होवे तो फिर जरा साड़ी आड़े रखती है। वह सो रही होवे तो न दिखे (इसलिए) साडी ठीक से रखती है। परन्तु उसमें जड़ के कारण तुझे क्या है ? आहा...हा...! बापू ! धर्मदृष्टि तो आत्मा ज्ञानस्वरूप है, भाई ! उस ज्ञानस्वरूप में श्रद्धा करे, उसे ज्ञान और शान्ति के परिणाम प्रगट होते हैं। उसे ऐसी मिथ्याश्रद्धा नहीं होती और (जिसे) ऐसे मिथ्याश्रद्धा हो, उसे शान्ति और सम्यग्दर्शन नहीं होता। क्यों, भाई ! ऐसी श्रद्धा रखकर सामायिक, प्रौषध करे तो ? नहीं होते ? ऐसे बैठे। किसकी हो सामायिक, प्रौषध ? मिथ्यादृष्टि की विषमदृष्टि और विषमज्ञान होता है।

बैरूप हूँ, कुरूप हूँ। '**(सुभग) सुन्दर...**' सुन्दर हूँ। देखो तो ! एक-एक अवयव ऐसे देखो, किसीके साथ मिलाओ। नाक देखो तो गरूड़ के उस (चोंच) जैसी; कान देखो तो कुण्डल जैसी; आँख देखो तो हिरण की आँख जैसी; मुँह देखो तो ऐसा मानो... लाल क्या कहलाता है वह ? अरीठा और ऐसा नाम आता है। शास्त्र में महिमा करे। टिंडोरा और लाल नहीं आता बड़ा ? ऐसा लाल; होठ ऐसे लाल, नैसर्गिक। नैसर्गिक हों ! नागरवेल के पान खायें और लाल-लाल रखे - ऐसा नहीं और अभी यह बहिने-बहिने ऐसा जरा लाल चोपड़ती है, वह भी नहीं और ये लड़के रात्रि में सफेद चोपड़ते हैं, उसकी लाली ऐसी आती है। हें ? सब सुना है और सब देखा है। लोग बातें करते हैं, वह सुनते है कि यह चोपड़ा लगता है... परन्तु यह ऐसा लाल कहाँ से ? शरीर साधारण है और लाल कैसे ? लाल चोपड़ा है। आहा...हा...! मुरदे का श्रृंगार करके (मानता है कि) मुझे श्रृंगार हुआ। मुरदे को श्रृंगार करके मुझे श्रृंगार किया (मानता है)। मूढ़ है, कहते हैं। तुझे आत्मा का भान नहीं है। आहा...हा...!

'**(मूरख)...**' हूँ। लो ! एक भी नहीं आता, बापा ! बहुत मूर्ख ! परन्तु तू मूर्ख नहीं है, बापू !

तू तो ज्ञानानन्द, केवली को प्रगट करे ऐसा (तू है।) मूरख-बूरख पर्याय में जानता हूँ, उसमें मूरख मने, वह तो मिथ्यादृष्टि है। आहा...हा...! एक समय में ज्ञान में कभी होवे तो क्या है ? वस्तु भगवान आत्मा है। ऐसे एक समय की पर्याय को मूर्खरूप माने, वह आत्मा को नहीं मानता, आत्मा को नहीं जानता, उसे आत्मा की श्रद्धा नहीं है।

ऐसे '**चतुर हूँ।**' गाँव के सब हमारे यहाँ पूछने, सलाह लेने आते हैं। समझ में आया ? हम गाँव खबरिया हैं, ठीक ! जितने गाँव के लोग हों, वे सब हमें पूछने आते हैं। भाई ! गाँव में... वह होशियार व्यक्ति कहलाता होगा या नहीं ? 'करांची' रहते थे। सब पूछने आते। भाई ! चतुर व्यक्ति को सब पूछने आते हैं। लो ! सगाई करना हो, लड़की का करना, अमुक पूछना, पूछने आते हैं, भाई ! इसका तुम क्या कहते हो ? ये सब चतुर कहलाते हैं। कहते हैं, हम चतुर है - ऐसा माननेवाले जीव मूढ़ है - यहाँ तो ऐसा कहते हैं।

मुमुक्षु :- ...

उत्तर :- यह सब तो देखा होगा या नहीं ? पूरी दुनिया (देखी है।) कितने वर्ष से, यहाँ (संवत्) १९५३ से तो देखते हैं और दुकान पर भी देखते थे। दुकान पर भी बहुत अधिक देखते थे। समझ में आया ? आहा...हा...!

'**(प्रवीन)**' हैं। कोई बात पर से संबंधित हमारी। भाई ! ऐसा कितने ही कहते हैं।

मुमुक्षु :- यह सबमें होशियार है।

उत्तर :- हाँ, सबमें होशियार। एक व्यक्ति कहता था। गायें देखनी हो तो इतना... यह, भेंस को देखना हो तो यह, स्त्री को देखना हो तो यह, आदमी को देखना हो तो यह, मकान को देखना हो तो यह - इनकी सब परीक्षा होती है। सब संबंधित को लगती। सोनेकी अँगुठी ऐसी होती है, अमुक ऐसा होता है, वर्ण ऐसा होता है, गहना ऐसा होता है, गहने में ऐसा पोला होता है। एक-एक सब से संबंधित। धूल में भी होशियार नहीं है, कहते हैं। व्यर्थ का आत्मा के भान बिना ऐसी चतुराई को अपनी मानना मूढ जीव है, कहते हैं। आहा...हा...! भाई ! ठीक होगा यह ? तुमने वहाँ होशियारी नहीं की होगी ?

मुमुक्षु :- सब खुल्ला ...

उत्तर :- क्या कहते हैं ? खुल्ला करते हो.. सत्य बात। देखो न ! किन्तु यह तो

'दौलतरामजी'ने लिखा है। देखो ! शास्त्र का सार करके (लिखा है।) इस अजीव को ही अपना मानता है। यह सब मूर्खता अजीवता है। यह कहाँ आत्मा का स्वभाव है ? और चतुर (होवे), बाहर का ज्ञानावरणीय का कुछ उघाड़ होवे, लौकिक कला और ज्ञान होवे, चतुराई होवे, पाँच पूछने बैठे ही होवें, पाँच-पच्चीस इसके घर में पूछने (बैठे होवें) और सम्बन्ध-बबन्ध करने में होशियार होवे तो इसे हमेशा लापसी मिले। किसी की सगाई करे न ! कितने ही ऐसे होशियार होते हैं। वे पड़े तो वहाँ एकदम सगाई हो जाए, दूसरा पड़े तो सगाई नहीं हौ। ऐसे के ऐसे। कितने ही ऐसे सब देखे हैं, हाँ ! आहा...हा...! यह सब मात्र लापसी खाने के अभिलाषी हैं। मानते ऐसा है कि हम जहाँ पड़ते हैं, वहाँ सब व्यवस्थित हो जाता है... कहते हैं कि, हम चतुर (-ऐसा मानना), वह जीव की बड़ी भूल है। आहा...हा...! भाई !

'**भावार्थ :- जीव तो त्रिकाल ज्ञानस्वरूप है...**' भावार्थ है न ? त्रिकाल भगवान चैतन्य ज्योत है। ज्ञान जिसकी चाल, ज्ञान जिसका स्वभाव, ज्ञान जिसका रूप, ज्ञान जिसकी सम्पदा, ज्ञान जिसका भाव - ऐसा आत्मा है। उससे अतिरेक करके परवस्तु को, किसी भी क्रिया को अपनी मानना, वह जीव की भूल की बड़ी मिथ्यादर्शन / श्रद्धा है। जहाँ तक मिथ्यादर्शन होता है, (वहाँ तक किसी प्रकार का धर्म-बर्म कोई त्याग वैराग्य उसे सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया ? भाई ! यह हेडमास्टर सब होशियार कहलाते हैं या नहीं ? सबको हाथ में रखते हैं। वे कितने ही ऐसा रखें। आहा...हा...! अभिमान (करे)। उसे शरीर-बरीर ठीक (इसलिए ऐसा माने कि) मालिक को दबाना और मालिक को वश रखना, यह तो अपनी कला है। आहा...हा...! हें ?

मुमुक्षु :- अखबार में आया था।

उत्तर :- आयो होगा, परन्तु यह तो मैंने हमारे यहाँ नजरों से देखा था। 'गारियाधार' की बात है। यह तो बहुत वर्ष (पूर्व की) बात हाँ ! ५५-६० वर्ष पहले की बात है। साथ में एक गंजा रहता गंजा। वह गंजा रहता भाई ! वह सामने रहता न ? उसकी दुकान बाहर बाजार में थी। उस समय मेरी उम्र छोटी, शरीर बहुत सुन्दर और सब बातें ऐसी करे कि ऐसा ओ..हो...हो...! कहा, क्या करता है यह ? महिलाये निवृत्त होकर ऐसे गप्पे लगायें ! और माने कि हम धर्मी है, प्रतिक्रमण करते हैं, सामायिक करते हैं, प्रौषध करते है, प्रतिक्रमण करते है। बहुत अच्छी बात है। धर्म का भान नहीं हो कि आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है, उसके ज्ञान बिना यह अज्ञानी जीव, वह

त्रिकाल स्वरूप है उसे/ स्वयं को नहीं जानता।

'**जो शरीर है, वही मैं हूँ; शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ; शरीर स्वस्थ होवे तो मुझे लाभ हो...**' निरोगता होवे तो धर्म किया जा सता है - ऐसा माननेवाले मूढ़ जीव हैं। सब व्यर्थ आता है इसमें। देखो ! '**बाह्य अनुकूल संयोग से मैं सुखी...**' बादशाही है, अभी सब व्यवस्थित है। लड़के व्यवस्थित, लड़किया व्यवस्थित; दामाद मिले तो ऐसे; मकान लेने जाएं तो पच्चीस हजार में लेने जाएं तो पचास हजार में मिल जाता है। सब प्रकार से कौन जाने... उलटा डालें तो सुलटा पड़ता है। भाई ! यह होता है, वह तो पुण्य के कारण होता है, इसमें तेरे कारण क्या है ? तू कहाँ वहाँ घुस गया तो व्यवस्थित करे ? (ऐसे) '**मैं सुखी...।**'

'**प्रतिकूल संयोग से मैं दुःखी...**' कहो, समझ में आया ? मूढ़ है, कहते हैं। मिथ्यादृष्टि पापी है। पाप को करता है, दुःख को करता है, दुःख को भोगता है, भविष्य के दुःख के परिभ्रमण के भाव को उत्पन्न करता है। समझ में आया ? '**मैं निर्धन, मैं धनवान, मैं बलवान, मैं निर्बल, मैं मनुष्य, मैं कुरूप...**' मनुष्य कैसा ? वह तो जड़ है। '**मैं कुरूप, मैं सुन्दर - ऐसा मानता है। शरीराश्रित उपदेश...**' लो ! मोक्षमार्ग प्रकाशक का डाला। शरीराश्रित उपदेश होता है, यह आत्मा उपदेश करता है - ऐसा मानता है। वह तो वाणी-जड की क्रिया है। आत्मा उपदेश कर सकता है ? आत्मा में शब्द है, वह कर सकता है ? बहुत मानते हैं। अभी सम्प्रदाय के कितने ही साधु (कहते हैं कि) हम उपदेश देकर धर्म प्राप्त कराते हैं। अपने को वह नहीं करना, उसे जिलाना-ऐसा नहीं करना; उपदेश देना कि भाई ! किसी को मारना नहीं, किसी को ऐसा नहीं करना - ऐसा उपदेश दें तो धर्म होता है। उपदेश तो जड की भाषा है। आहा...हा...! यह शरीर की क्रिया उपदेश, उसे अपनी माने और मैंने उपदेश दिया, इसलिए मुझे लाभ होता है और उस उपदेश से जगत धर्म प्राप्त करता है और उससे मुझे लाभ होता है। मूढ़ जीव है; मिथ्यादृष्टि जीव को नहीं जानता। समझ में आया ?

'**उपवासादि क्रिया...**' इस शरीर में रोटियां नही खाई, वहाँ उपवास हुआ, वहाँ मुझे धर्म हुआ-ऐसा मानता है। रोटियाँ, वह तो इतना जड़ नहीं आता था। शरीर में नहीं पड़ा, इसमें तुझे धर्म कहाँ से हो गया ? समझ में आया ? आहा...हा...! कठनि लगता है।

मुमुक्षु :- लड़के तो...

उत्तर :- यह सब किसके लिये है ? लड़के छोटे होते हैं, वे ऐसे बड़ाई करते है कि मैं ऐसा कर सकता हूँ, मैं ऐसा कर सकता हूँ, मैं उछाल सकता हूँ, गैंद ऐसे कर सकता हूँ, अमुक ऐसा कर सकता हूँ, एक हाथ मारुं तो गेंद ऐसे कर सकता हूँ... वह भी मूढ़ है। कहो, समझ में आया ? यह लात (पैर) मारना चाहिए, मेरा पैर लगे तो गेंद ऐसे उड़ती है। आहा...हा...! पैर की ठोकर मारता हूँ, पूरा पैर नहीं मारता, कहे। जाए ऊँचे... ओ..हो...हो...! पैर कहाँ तेरा है कि तू ठोकर मारे ? सुन न ! समझ में आया ? क्या कहा ?

'**यह उपवासादि...**' अर्थात् शरीर में आहार कुछ थोड़ा आया, लिया, उनोदर किया, समझ में आया ? रात्रि में... ऐसा मुझे प्रायश्चित दो यह सब धर्म है - ऐसा मानते हैं। यह भाषा तो शरीर की क्रिया है, उसमें कोई राग मन्द हुआ हो तो वह पुण्य है और उसमें धर्म मानता है। '**अपनापन मानता है...**' यह क्रिया मेरी है। कठिन बात है। 'मोक्षमार्ग प्रकाशक' में 'टोडरमलजी' ने लिखा है। समझ में आया ? कि अनादि मिथ्यादृष्टि द्रव्यलिंगी साधु था, उसकी क्या भूल रह गयी ? उसने पुरुषार्थ तो बहुत किया था। वह शरीर की क्रिया और उपवास की जड़ की क्रिया (हो), उसे अपनी मानता है... राग मन्द हो, वह शुभ है, परन्तु देह की क्रिया में आहार नहीं मिला और उसे अपनी क्रिया मानता है। वह तो जड़की क्रिया हुई। समझ में आया ? है न यह ? हें ? देखो ! यह इसमें है, हों ! 'उसी प्रकार कर्मोदयजनित शुभाशुभ कार्य का कर्ता, तद्रुप परिणमें तो भी उस प्रकार का अन्तरंग श्रद्धान है कि यह कार्य मेरे... परन्तु यदि देहाश्रित व्रत, संयम को भी अपना माने....' देहाश्रित। 'टोडरमलजी' मोक्षमार्ग प्रकाशक (में कहते हैं।) 'देहाश्रित व्रत-संयम को भी...' अपने देह की क्रिया हो। दया पालने की हो, देह से, हाँ ! उसे अपनी मानकर कर्ता हो, वह मिथ्यादृष्टि है। वह अज्ञानी है, उसे आत्मा की श्रद्धा का पता नहीं है। आहा...हा...! बहुत कठिन बात, भाई ! देखो, यह है। ३५५ पृष्ठ पर है। आहा...हा...! कहो, समझ में आया।

'**अपनापना मानता है - इत्यादि अभिप्राय द्वारा...**' है न ? नीचे लिखा है, हाँ ! इसने इसमें लिखा है, पुरानी प्रत में से। '**जो शरीरादि पदार्थ दिखायी देते हैं, वे आत्मा से त्रिकाल**

भित है...' यह पुरानी प्रत में लिखा है। '**उन पदार्थों के ठीक रहने या बिगड़ने से आत्मा का तो कुछ भी अच्छा-बुरा नहीं होता, परन्तु मिथ्यादृष्टि जीव उससे विपरीत मानता है।**' इसमें लिखा है, हाँ ! इसने स्वयं ! पुरानी प्रति है न ? पहली हिन्दी (प्रति में।)

'**इत्यादि मिथ्या अभिप्राय द्वारा...**' इत्यादि अर्थात् जितने सब हैं, उनमें कहीं-कहीं किसी रजकण में, किसी स्कन्ध में, किसी पर्याय में, किसी खाने-पीने की क्रिया में, कहीं भी अपनापना मानता है, मुझसे होता है - ऐसा मानता है। ऐसे '**अभिप्राय से जो अपने परिणाम नहीं है, परन्तु सब परपदार्थ के ही परिणाम है...**' समझ में आया ? उस परपदार्थ की अवस्था को आत्मा की माने, आत्मा की सत्ता से होती है - ऐसा माने, '**उन्हें आत्मा का परिणाम मानता है, वह जीवतत्त्व की** (महा) **भूल है।**' मिथ्यादृष्टि की बड़ी भूल है। वह जीवतत्त्व को नहीं जानता। कहो, समझ में आया वह ? यह तो समझ में आये - ऐसी बात है अब, आहा...हा...! इतनी सी भी पता नहीं होती। जैन में जन्मा होवे तो ऐसा का ऐसा उल्टा का उल्टा चला जाता है।

यह जीवतत्त्व में अपना ज्ञानानन्द त्रिकाल स्वरूप है, वह तो जानने - देखने की ही क्रिया को करनेवाला है। यह शरीरादि की क्रिया का या रागादि क्रिया उसकी नहीं। उसका कर्ता स्वभाव नहीं हो सकता - ऐसा जिसे भान नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि जीव की बड़ी भूल करता है।

अब, पाँचवे में '**अजीव और आस्रवतत्त्व का विपरीत श्रद्धान**' बतलायेंगे। अजीव, अजीव, अजीव, की भूल। यह जीव की भूल कही थी। अब अजीव की भूल (कहते हैं।) शरीर उत्पन्न हुआ तो मैं उत्पन्न हुआ। इसमें दृष्टान्त दिया है, हाँ ! और मर गया। देखो ! मुर्दा। अर्थी निकाली, देखो ! दोनो दिये हैं, है न ? देखो यह ! मुँह और... शरीर उत्पन्न हुआ तो मैं उत्पन्न हुआ, शरीर मर गया तो मैं मर गया - ऐसा (जो) मानता है, वह अजीव की (भूल है) और आस्रव की (भूल अर्थात्) पुण्य-पाप का भाव दुःखरूप है, शुभाशुभभाव दुःखरूप है, उनकासेवन करके सुखरूप मानता है, वह मिथ्यादृष्टि की आस्रवतत्त्व की भूल है।

इसकी विशेष व्याख्या करेंगे। (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव।)